'1919 का भारत सरकार अधिनियम'
माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार

1909 का मार्ले-मिंटो सुधार भारतीय जनमानस को संतुष्ट नहीं कर पायी। कांग्रेस का नरमपंथी वर्ग तथा मुसलमान जिन्हें संतुष्ट करने के लिये यह सुधार अधिनियम लाया गया था, शीघ्र ही अपने को ठगा महसूस करने लगे। भारतीय राष्ट्रवाद का उग्रवादी एवं क्रांतिकारी दल तो पहले से ही असंतुष्ट था। असंतोष के ऐसे ही वातावरण में ब्रिटिश सरकार इस निश्चय पर पहुँची कि भारतीयों को अब शासन में ज्यादा से ज्यादा हिस्सेदारी दी जाये। वस्तुतः 1919 का भारत सरकार अधिनियम इसी सोच का प्रतिफल था।

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार के पूर्व भारत का राजनैतिक नभमंडल पूर्णतः अशांत था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस नरमपंथी दल जिन्हें ब्रिटिश सरकार के संवैधानिक सुधारों में पूर्णविश्वास आस्था थी वे भी अब विधान परिषदों में शासकीय एवं मनोनीत सदस्यों के बहुमत तथा मुसलमानों के पृथक प्रतिनिधित्व को लेकर ब्रिटिश सरकार से खफा थे। मुसलमान भले ही प्रारंभ में पृथक प्रतिनिधित्व को लेकर थोड़े उत्साहित थे परंतु शीघ्र ही उनका उत्साह भी ठंडा पड़ गया और वे कांग्रेस के साथ कदमताल करने लगे। मुसलमानों के मोहभंग के लिए कुछ आन्तरिक एवं कुछ वाह्य कारण जिम्मेवार रहे हैं। मुसलमान अंग्रेजी सरकार के साथ अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय स्थापित करने की शर्त तय नहीं होने तथा 1911 में बंगाल विभाजन रद्द होने से अप्रसन्न थे। इसी समय विश्व राजनीति में कुछ ऐसी घटनायें घटित हुई जिससे मुसलमान ब्रिटिशसरकार से और दूर हो गये। ये घटनायें थी, इटली तथा तुर्की के बीच युद्ध (1911-12) तथा बालकन युद्ध। इनके प्रति अंग्रेजों के रूख को मुसलमान ईसाईयों का षड्यंत्र मानने लगे। फलतः वे कांग्रेस के करीब आये एवं 1916

में कांग्रेस-लीग लखनऊ समझौता हुआ।

उग्रवादी/गरमपंथी विचार वाले नये होमरूल आन्दोलन के माध्यम से अपना विरोध दर्ज करा रहे थे वहीं क्रांतिकारी पंजाब में गदर दल, बंगाल में कामा गाटा मारू कांड तथा दिल्ली में हार्डिंग पर बम फेंककर अपना असंतोष जाहिर कर रहे थे। सरकार इनसे निपटने के लिये 1910 में भारत समाचार पत्र एक्ट, 1911 का विद्रोही सभा एक्ट, 1913 का फौजदारी कानून तथा 1915 में भारतीय रक्षा अधिनियम जैसे प्रतिक्रियावादी कानून लायी परंतु ये उतने सफल नहीं हुये।

ऐसे ही वातावरण में 1914 का विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया जिसका भारत की रक्षा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा परंतु अंग्रेजी साम्राज्य का हिस्सा होने के कारण युद्ध में सम्मिलित हो गया। युद्ध में भारत ने ब्रिटेन को न केवल हर प्रकार से मदद की बल्कि खुशी-खुशी 10 करोड़ पाउंड का ऋण भार भी अपने ऊपर ले लिया क्योंकि युद्ध के बाद भारतीयों को स्वशासन एवं आत्मनिर्णय का अधिकार मिलेगा। ऐसी स्थिति में सुधारों की एक विस्तृत आवश्यकता थी।

उपरोक्त जन जागृति को शांत करने के लिए भारत सचिव लार्ड मान्टेग्यू ने 20 अगस्त 1917 को कॉमन्स सभा में सुधारों की एक रूपरेखा प्रस्तुत की-

(i) ब्रिटिश शासन का लक्ष्य भारत में स्वशासन को विकसित करना था।

(ii) स्वशासन चरणबद्ध तरीके से दिया जायेगा।

(iii) विभिन्न चरणों का निर्धारण भारतीयों द्वारा स्वशासन की दिशा में की गई प्रगति पर निर्भर था।

(iv) प्रगति के विषय में निर्धारण ब्रिटिश संसद तथा भारत सरकार द्वारा किया जाना था।

यह प्रथम शासकीय घोषणा थी जिसके द्वारा औपनि-

भारत में ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्य डोमीनियन्स की तरह स्वतंत्र डोमीनियन की स्थिति प्रदान करना प्रस्तावित था। 1917 ई. के प्रस्ताव के बाद मांटेग्यू भारत आये तथा वायसराय चेम्सफोर्ड तथा अन्य नेताओं से शिमला में विचार विमर्श किया। उक्त विचार जुलाई 1918 ई. में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के नाम से प्रकाशित हुआ। इसी पर आधारित एक विधेयक ब्रिटिश संसद द्वारा दिसम्बर 1919 में पारित हुआ जो मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार के नाम से सम्बोधित हुआ।

इस अधिनियम के अन्तर्गत निम्न धारायें थी–

(1) इस अधिनियम द्वारा गृह सरकार में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन लाये गये पहला अब भारत सचिव तथा उसके कौन्सिल का वेतन जो अब तक भारतीय राजस्व से मिलता था अब ब्रिटिश राजस्व से मिलेगा। दूसरे भारतीय उच्च आयुक्त (Indian High Commissioner) का पद सृजित अब उसे संग्रहागार (Stores Department) तथा भारतीय विद्यार्थी का विभाग दे दिया गया। वह भारत सरकार के उपयोग के लिये आवश्यक सभी वस्तुयें एवं लंदन में खरीदने तथा भारतीय विद्यार्थियों के हित पोषण जैसे कार्य करेगा।

(2) गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के 8 सदस्यों में से 3 भारतीय नियुक्त किये गये और उन्हें विधि, शिक्षा, श्रम, स्वास्थ्य तथा उद्योग विभाग दिये गये

(3) अभी तक सभी विषयों (प्रशासन) पर केन्द्र का अधिकार था परंतु इस अधिनियम द्वारा इन विषयों को केन्द्र एवं राज्यों में बंटवारा कर दिया गया। केन्द्रीय सूची में सम्मिलित विषयों पर सपरिषद् गवर्नर जनरल का अधिकार था। इस सूची में राष्ट्रीय महत्व के विषय थे जैसे- विदेशी मामले, रक्षा, राजनैतिक सम्बन्ध, डाक और तार, सार्वजनिक ऋण, संचार व्यवस्था, इत्यादि। प्रान्तीय महत्व के विषय थे- स्वास्थ्य स्थानीय प्रशासन, शिक्षा, भूमिकर, जल संभरण, अकाल सहायता, कृषि, शांति व्यवस्था इत्यादि।

(4) विधायन के क्षेत्र में भी परिवर्तन लाये गये। केन्द्र में अब द्विसदनीय व्यवस्था स्थापित हुई। प्रथम राज्य परिषद (Council of State) तथा दूसरा केन्द्रीय विधान सभा (Central Legislative Assembly) था।

(5) राज्य परिषद का भी उपरी सदन था उसमें 60 सदस्य होते थे जिनमें 26 गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत तथा 34 निर्वाचित होते थे इस प्रकार निर्वाचित सदस्यों का बहुमत स्थापित किया गया। 26 मनोनीत में से 19 शासकीय एवं 7 अशासकीय सदस्य होते थे। 34 निर्वाचित सदस्यों में 20 साधारण चुनाव द्वारा, 10 मुसलमानों द्वारा, 3 यूरोपीयों द्वारा तथा एक सिक्खों द्वारा निर्वाचित होते थे। इसका प्रतिवर्ष आंशिक नवीकरण होता था यद्यपि ये पाँच वर्षों के लिये चुने जाते थे। स्त्रियों की सदस्यता उपयुक्त नहीं समझी गई।

(5) राज्य परिषद के चुनाव में केवल वही लोग मत दे सकते थे जिनकी आय दस हजार वार्षिक थी अथवा जो न्यूनतम 750 रु. वार्षिक भूमि कर देते थे। इस तरह 1920 में भारत की 24 करोड़ आबादी में से केवल 17365 व्यक्ति ही मतदाता थे। वही व्यक्ति प्रत्याशी बन सकता है जो किसी विधान मंडल सदस्य रहा हो या विश्वविद्यालय में सिनेट का सदस्य रहा हो।

(6) केन्द्रीय विधान सभा को निम्न सदन भी कहा जाता था उसमें 145 सदस्य थे जिसमें 104 निर्वाचित एवं 41 मनोनीत होते थे। मनोनीत में 26 शासकीय एवं 15 अशासकीय होते थे। आगे 104 निर्वाचनों में 52 साधारण निर्वाचन क्षेत्रों से 32 साम्प्रदायिक क्षेत्र से (30 मुसलमान एवं दो सिख) तथा 20 विशेष निर्वाचन क्षेत्र (7 भूमिपतियों द्वारा, 9 यूरोपीयों द्वारा, एवं 4 भारतीय व्यापारिक समुदायों द्वारा) से निर्वाचित होते थे। इनका कार्यकाल 3 वर्ष था लेकिन गवर्नर जनरल की इच्छा पर बढ़ाया जाता था।

(7) यहाँ भी मताधिकार बड़ा सीमित था। मतदान का अधिकार उन्हें दिया गया था। 5 रु. मासिक किराया या 3 रुपये वार्षिक नगरपालिका कर देता हो अथवा न्यूनतम 2000 वार्षिक आय पर आयकर या 50 रु. वार्षिक भूमिकर देता हो। ऐसे लोग 1920 में आठ लाख के लगभग थे।

(8) प्रान्तों में स्थानों का बँटवारा जनसंख्या पर नहीं अपितु उनके महत्व पर था। उदाहरण के रूप में पंजाब (सैनिक महत्व के कारण) तथा बिहार तथा उड़ीसा को 12, 12 स्थान मिले जबकि पंजाब की जनसंख्या बिहार और उड़ीसा से 2/3 थी। मद्रास तथा बम्बई प्रत्येक को 16 स्थान मिले यद्यपि बम्बई की जनसंख्या मद्रास से आधी थी। बम्बई का व्यापारिक महत्व था।

(9) केवल वित्त सम्बन्धी मामलों को छोड़कर अन्य सभी मामलों में केन्द्रीय विधान मंडल के दोनों सदनों को बराबर शक्तियाँ (अधिकार) थी। केन्द्रीय विधान मंडल के सदस्य सरकार से प्रश्न एवं पूरक प्रश्न पूछ सकते थे तथा उनकी आलोचना भी कर सकते थे। दोनों सदनों में गतिरोध की दशा में गवर्नर जनरल संयुक्त बैठक बुला सकता था जहाँ बहुमत से अंतिम निर्णय होता था। अध्यादेश तथा वीटो का अधिकार गवर्नर जनरल के पास बना रहा।

(10) इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली आरंभ की गई। अब प्रान्तीय विषयों को दो भागों में बाँट दिया - आरक्षित तथा हस्तांतरित विषय (Reserved and Transferred subject)। आरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर अपने उन पार्षदों की सहायता से करता था जिन्हें वह मनोनीत करता था और जो विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे। हस्तांतरित विषयों का प्रशासन गवर्नर उन मंत्रियों की सहायता से करता था। जिन्हें वह निर्वाचित सदस्यों से नियुक्त करता था। ये लोग सदन के प्रति उत्तरदायी थे परन्तु वे

गवर्नर की इच्छा पर्यन्त ही पदों पर बने रह सकते थे।

(क) आरक्षित विषय थे - वित्त, भूमिकर, अकाल सहायता, न्याय, पुलिस, पेंशन, समाचार पत्र, सिंचाई, जल मार्ग, खान, बिजली, कारखाने, सार्वजनिक सेवायें, बंदरगाह आदि।

(ख) हस्तांतरित विषय - शिक्षा, पुस्तकालय, सहायता, स्थानीय स्वायत्त शासन, स्वास्थ्य, कृषि, सहकारी समितियाँ, पशु चिकित्सा, मत्स्य पालन, सार्वजनिक निर्माण विभाग, माप-तौल, सार्वजनिक मनोरंजन इत्यादि।

(11) प्रान्तीय परिषदों में कम से कम 70 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होते थे। शासकीय सदस्य 20% से अधिक नहीं होते थे तथा शेष मनोनीत होते थे। संख्या की दृष्टि से बंगाल सबसे बड़ा प्रान्त (140 सदस्य 114+16+10) था जबकि असम तथा उत्तर पश्चिमी प्रांत दोनों के विधान परिषद में 53 सदस्य (39+7+7) थे।

(12) मताधिकार की योग्यतायें प्रत्येक प्रान्त में भिन्न भिन्न थी परन्तु प्रायः ऐसा किया गया कि जो लोग ग्रामीण क्षेत्रों में 10 रु. से लेकर 50 रु. तक प्रतिवर्ष भूमिकर देते थे उनको मताधिकार दे दिया गया। नगरों में जो कम से कम 2000 रु. वार्षिक आमदनी पर आयकर देते थे या जिन्हें मकान से कम से कम 30 रु. वार्षिक किराया मिलता था, जो 36 रु. वार्षिक किराया देते थे या जो नगरपालिका को कम से कम 3 रु. वार्षिक टैक्स देते थे। इस तरह ब्रिटिश भारत की आबादी 1920 में 24 करोड़ 7 लाख में से केवल 53 लाख की आबादी को मताधिकार मिला जो जनसंख्या का 2.5% था।

(13) इस अधिनियम ने प्रान्तीय विधान परिषदों के कार्यक्षेत्र में भी विस्तार किया। स्वतन्त्र सदस्यों को बोलने की स्वतन्त्रता थी। अब वे प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे, प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते थे। किसी भी प्रान्तीय विषय पर कानून बना सकते थे

लेकिन प्रत्येक पारित विधेयक पर गवर्नर की अनुमति आवश्यक थी। सदस्य बजट को अस्वीकार कर सकते थे लेकिन गवर्नर चाहे तो उनकी बिना अनुमति के पारित कर सकता था।

इस तरह इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश सरकार ने उत्तरदायी शासन की ओर कदम बढ़ाने का दावा किया परंतु जब यह अधिनियम अपने कार्यरूप में आया तो इसमें कई त्रुटियाँ उजागर हुई। सर्वप्रथम इस अधिनियम द्वारा कार्यकारिणी के स्वरूप में परिवर्तन लाये गये तथा आठ सदस्यीय गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में तीन भारतीय सदस्य की नियुक्ति हुई परंतु उन्हें एक भी महत्वपूर्ण विभाग नहीं दिया गया। ये सदस्य विधानमंडल के प्रति भी उत्तरदायी नहीं थे। इस परिवर्तन में वे गवर्नर की हाँ में हाँ मिलाते थे।

केन्द्रीय स्तर पर उत्तरदायी सरकार की नहीं बल्कि अनुक्रियात्मक (Responsive) सरकार बनायी गई। कार्यकारिणी पार्षदों को विधानमंडल नहीं हटा सकती थी न वे उसके प्रति उत्तरदायी थे। यद्यपि प्रतिनिधियों को कुछ अधिकार दिये गये परंतु गवर्नर जनरल को अभी भी कई विशेषाधिकार प्राप्त थे।

इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना की गई परंतु प्रशासन को दो स्वतंत्र भागों में बाँटना राजनीति के सिद्धान्तों तथा व्यवहार के विरुद्ध था। विषयों का आरक्षित तथा हस्तांतरित होना भी अव्यवहारिक था क्योंकि मंत्री या कार्यकारी पार्षद एक दूसरे से स्वतंत्र रहकर कार्य नहीं कर सकते थे, जैसे सिंचाई आरक्षित विषय था और कृषि हस्तांतरित, परंतु स्पष्टतः दोनों एक दूसरे से अविभेद्य है। दूसरे कार्यकारी पार्षद अयोग्य नौकरशाह होते थे तो मंत्री जनता के प्रतिनिधि, यह भी एक विरोधाभास था। गवर्नर जनरल अकसर मंत्रियों की उपेक्षा कर पार्षदों (कार्यकारिणी के) का पक्ष लेते थे। मंत्रियों के दो स्वामियों को प्रसन्न

करना होता था, एक गवर्नर जनरल को जो उसे नियुक्त करता था और जिसके इच्छापर्यन्त वह मंत्री बना रहता था तथा दूसरे विधान परिषद को जो उसे अपना प्रतिनिधि मानता था। इस दुविधा के साथ मंत्री लोगों का अपने विभाग पर भी नियंत्रण नाममात्र का था क्योंकि उनके सचिव (विभागीय) जिन्हें गवर्नर का आशीर्वाद प्राप्त होता था, वे मनमानी करते थे।

लेकिन जब हम इस अधिनियम के समग्र उपबन्धों पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि कई दोषों एवं रुकावटों के बावजूद यह अधिनियम पूर्व के सुधारों से निश्चय ही अग्रगामी था। इसके द्वारा न केवल मताधिकार में कुछ विस्तार हुये बल्कि प्रत्यक्ष चुनाव आरंभ हुये। इसके अतिरिक्त भारतीयों को सीमित ही सही परंतु उन्हें राजनैतिक प्रशिक्षण का वह सुअवसर प्राप्त हुआ जिसके भविष्य में महत्वपूर्ण परिणाम निकले।